International Journal of Sanskrit Research 2017; 3(2): 126-128

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2017; 3(2): 126-128
© 2017 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 26-01-2017
Accepted: 27-02-2017

डॉ0 तरुण कुमार शर्मा
प्रवक्ता, संस्कृत–विभाग, अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा (बाँदा) उ0प्र0

Correspondence
डॉ0 तरुण कुमार शर्मा
प्रवक्ता, संस्कृत–विभाग, अतर्रा पी0जी0 कालेज, अतर्रा (बाँदा) उ0प्र0

भवभूति के नाटकों में सांस्कृतिक जीवन मूल्य

डॉ0 तरुण कुमार शर्मा

किसी समाज की संस्कृति उसके भौगोलिक परिप्रेक्ष्य में उन अवयवों से निर्मित होती है, जो वह अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए विकास क्रम में अर्जित करती है। संस्कृति किसी भी समाज के आन्तरिक संस्कारों का वाह्य स्वरूप होती हैं, किसी भी समाज की स्थिरता उसकी सांस्कृतिक चेतना तदनुसार सांस्कृतिक जीवनमूल्यों पर निर्भर करती है। यह मानव गुणों की गहराई है। संस्कृति का आनन्द अन्तःकरण को शक्ति प्रदान करता है। भौतिक जीवनमूल्य आगे चलकर सांस्कृतिक जीवनमूल्य का निर्माण करते हैं केवल भौतिक समृद्धि ही व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के अस्तित्व को लम्बे समय तक नहीं बनाये रख सकती है। भारतीय संस्कृति अध्यात्मपरक है इसलिये वह भोगवाद की मानसिकता को अकेले लेकर नहीं चलती। मानव जीवन के एक क्षेत्र में उसकी आवश्यकता बतलाई गई है, वरन् वे होने चाहिये धर्म के द्वारा नियंत्रित मोक्ष तथा भगवत–प्राप्ति के साधन रूप केवल भौतिक समृद्धि मनुष्य को असुर बनाती है, किन्तु अध्यात्म पर आधारित भौतिक समृद्धि मनुष्य को सुर का स्तर प्रदान करती है। भारतीय मिथकों में प्रदर्शित सुर और असुरों के बीच के द्वन्द को इसी परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिये। जहाँ केवल भौतिकता पर आधारित असुरों का अस्तित्व क्षयकारी होता है, वहीं आध्यात्मिकता पर आधारित देवों का अस्तित्व बना रहता है।

इस प्रकार किसी समाज तथा राष्ट्र के वाह्य स्वरूप की रचना उसके भौतिक जीवनमूल्य करते हैं, किन्तु आन्तरिक चेतना सांस्कृतिक मूल्यों से बनती है, ये सांस्कृतिक मूल्य ही उसकी ऊर्जा तथा प्राण शक्ति होते हैं, जिनसे उसकी सत्ता लम्बे समय तक बनी रहती है। पुरूषार्थ चतुष्ट्य संस्कृति की प्रमुख विशेषता है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन चार के अतिरिक्त संसार में कोई ऐसी वस्तु कोई सुख प्राप्तव्य नहीं, जो पुरुष के प्रयत्न के द्वारा प्राप्त योग्य हो, सबका पर्यवसान इन्हीं चार में हो जाता है।

सामाजिक धर्मपरक जीवनमूल्य में मानवीय धर्म आते जाते हैं–धर्य, क्षमा, मन को वश में रखना, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों का दमन, बुद्धि विद्या और क्रोध न करना, ये दस धर्म के लक्षण हैं। भवभूति के नाटक 'महावीरचरितम्' तथा 'उत्तररामचरितम्' ये सभी इन गुणों से सम्पन्न हैं; सभी धर्म रक्षक हैं। महावीरचरित के द्वितीय अंक में स्वयं भवभूति कहते हैं कि–

> 'निसर्गेण स धर्मस्य गोप्ता, धर्मदुहोवयम्'।[1]

राम के धैर्य, क्षमा, क्रोध न करना आदि गुणों के कारण ही जामदग्न्य राम के बारे में कहते हैं–हे राम! हृदय की तरह तुम आकृति से भी सुन्दर हो, तुम्हारे गुणों की रमणीयता अतर्क है, तुम मुझे सदा हृद्यंगम हो रहे हो–

> राम राम नयनाभिरामतामाशयस्य सहशी समुद्वहन्।
> अप्रतथ्येगुणरामणीयकः सर्वथैव हृद्यंगमाऽसि में।।[2]

जामदग्न्य के इस स्वगत कथन से भी राम के चरित्र के उत्कर्ष का ज्ञान प्राप्त होता है। परशुराम अहंकार, निगूढ़ तथा निपुण बुद्धि वैद्य पर गुणग्राही स्वजन्य को राम से इतना आकृष्ट हो गये हैं कि उन्हें अपने अहंकार पर अनास्था भी होने लगी। वह मन ही मन सोचते हैं कि राम अनन्त सामर्थ्य सारमय पदार्थ है तथा धर्म के रक्षा स्वरूप है, जिन्होंने सकल भुवन की रक्षा का संकल्प लिया। वह सोचते हैं ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो सकल भुवन की रक्षा का संकल्प लिया। वह सोचते हैं ऐसा प्रतीत हो रहा है, मानो सकल भुवन की रक्षार्थ कायाधारी अस्त्र वेद हों, ब्रह्माण्ड की रक्षा के लिए क्षात्र

धर्म ने शरीर धारण किया हो, सामर्थ्य का समूह हो या गुणों का संयम हो अथवा जगत का पुण्यकर्म मूर्ति धारण करके खड़ा हो–

त्रातु लोकनिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोषस्यगुप्त्यै।
सामर्थ्यानायिव समुदयः स४चयो वा गुणानां
प्रादुर्भूय स्थित इव जगत्पुण्य निर्माणराशिः।।[3]

महावीरचरितम् की तरह उत्तररामचरित में भी भवभूति लव की गम्भीर और मधुर आकृति से आविर्भूत इसी भाव की अभिव्यक्ति करते हैं –

त्रातुं लोकानिव परिणतः कायवानस्त्रवेदः
क्षात्रो धर्मः श्रित इव तनुं ब्रह्मकोषस्य गुप्त्यै।
सामर्थ्यानाभिव समुदयः संचयो व गुणानां
भाविर्भूय स्थितं इव जगत्पुण्य निर्माणराशिः।।[4]

भवभूति के नाटकों में धर्म और अधर्म के संघर्ष से ही कथाक्रम आगे बढ़ता है। उनके सभी नायक व उनके सहयोगी धर्म परायण और मानवीय गुणों से समृद्ध परिलक्षित होते हैं। भवभूति स्वयं धार्मिक व्यक्ति थे। वैदिक धर्म में उनकी आस्था थी। वेद, स्मृति, सदाचार और अन्तरात्मा के अनुकूल आचरण में उनका विश्वास था।

भवभूति ने देश, काल परिस्थिति एवं व्यक्ति के भेद से अगणित समस्याओं का समाधान के लिये जहाँ शास्त्र मौन हो जाते हैं, वहाँ साधुजनों के अन्तःकरण और उनके वचनों को ही धर्म के श्रेणी में रखा है। जब विश्वामित्र तारका को मारने का निर्देश राम को देते हैं तो राम उसके स्त्री होने पर हिचकिचाते हैं। इस पर विश्वामित्र कहते हैं कि वत्स शीघ्रता करो। आगे ब्राह्मणों का समूह मौत के मुंह में है। इस पर राम कहते हैं कि सभी प्रकार के दोषों से अलिप्त होने के कारण वेद के समान तथा पाप–पुण्य की व्यवस्थापिकायें हैं जैसा कि महावीरचरितम् में भी प्रतिपादित किया गया है–

सर्व दोषानभिष्वंगादाम्नाय समतां गताः।
युष्माकमभ्युपगमाः प्रमाणं पुण्यपापयोः।।[5]

भवभूति परोपकार, लोककल्याण एवं लोक–आराधन की स्थापना के लिए व्यक्तिगत गुणों के त्याग को ही समीचीन मानते हैं। उत्तररामचरित में राम पवित्र निर्दोष सीता को लोकरंजन की स्थापना के लिये निर्वासित कर देते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि प्रजा के अनुरंजन के लिये प्रेम, दया, सुख गुणों का कोई महत्व नहीं जैसा कि उत्तररामचरितम् में भी प्रतिपादित किया गया है–

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मु४चतो नास्ति में व्यथा।[6]

यहाँ पर भी राम विश्वामित्र के आदेश को ही धर्म का आदेश मानते हैं, क्योंकि राम के अनुसार ऋषियों की वाणी का अर्थ अनुसरण करती है–

ऋषीणां पुनराद्यानां वाचमर्थोऽनुधावति।[7]

भवभूति प्रत्येक वर्ण व आश्रम के लिये पृथक–पृथक निर्धारित धर्म में आस्था रखते थे, वे मानते थे कि ब्राह्मणों का धर्म ज्ञानार्जन है, और क्षत्रियों का धर्म समाज का धर्मानुसार नियमन। एक–दूसरे के कर्त्तयों का अपने हाथ में लेने के ये विरोधी थे, क्योंकि इससे समाज में उत्छृंखलता पैदा हो रही है, इसलिये जब शतानन्द जामदग्न्य को भस्म करने के लिये शापोदाक देने को तैयार होते हैं, तो दशरथ कहते हैं कि गुणों से प्रशंसनीय अपना बन्धु घर पर आया हुआ है। उसके प्रति ऐसा व्यवहार क्या ठीक है? यह विद्वान होकर भी जो मार्गच्युत हा रहा है, उसे विनीत करने के लिये राजा है, आप शान्ति धारण करें जैसा कि मालती माधव उल्लेख भी प्रापत होता है–

श्लाध्यो गुणैर्द्विजवरश्च निजश्चबन्धु स्तस्मिन् गृहानुपगते सदृशं किमेतत्।
विद्वानापि प्रचलितस्तु यदेव मार्गात्क्षत्रं हि तत्र विनयाय शमं भज त्वम्।।[8]

इसी प्रकार भवभूति यद्यपि अलग–अलग आश्रमों के निर्धारित धर्म नियमों को मानने में आस्था रखते थे, किन्तु परोपकार और लोकमंगल की स्थापना के लिये आश्रम और वर्ग के निर्धारित नियमों के पालन में अपवाद को भी अधार्मिक नहीं मानते थे। कामन्दकी संन्यासिनी थी, वह परोपकार व लोककल्याण की भावना के कारण अपने भिक्षुणी कर्म को त्याग कर मालती और माधव के विवाह रूप कर्त्तव्य में परिणित होती है और उसे श्रेष्ठ कार्य मानती है जैसा कि उल्लेख भी प्राप्त होता है–

यन्मां विधेयविषये सभवान्नियुङक्ते स्नेहस्यतत्फलमसौ प्रणयस्यसारः।
प्राणैस्तपोभिरथवाभिमतं मदीयैः कृत्यंघटेत सुहृदोयदि तत्कृतं स्यात्।।[9]

इसी प्रकार भवभूति के नाटकों में वैयाक्तिक धर्मों के साथ–साथ विशेष धर्म के मूल्य स्थापित किये हैं। लोकमंगल का संकल्प लिये विश्वामित्र राम को वन में ले जाते हैं और राम उनके आदेशों के अनुसार आचरण करते हैं। इसी प्रकार लोकाराधन के लिये राम, शम्बूक वध और सीता का निर्वासन करते हैं। संन्यासिनी कामन्दकी भी मंगल कार्य के लिये प्रवृत्त होती है।

इस प्रकार भवभूति परोपकार लोकरंजन के विशेष धर्म की श्रेणी में अपने नाटकों में रखते हैं और इनकी स्थापना धर्म पुरूषार्थ निरूपित करते हैं। भवभूति इन गुणों को राजा के सन्दर्भ में विशेष महत्त्वकारी मानते हैं, साथ ही भवभूति सदाचार और नीतिगत आचरण को भी विशेष महत्व देते हैं। भवभूति मानते हैं कि अनेक समस्याओं के समाधान में साधुजन का अन्तःकरण ही प्रमाण होता है। लगभग इसी भाव को कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक में व्यक्त किया है। अर्थ को धर्म के बाद रखा गया है। भवभूति भी यही मानते थे कि लोक कल्याण के लिये लगाये जाने वाला धन सार्थक होता है। उनके पूर्वज धन का प्रयोग तालाब और कुंए खुदवाने के लिये करते थे।

तेश्रोत्रियास्तत्वविनिश्चयाय भूरि श्रुतं शाश्वतमाद्रियन्ते।
इष्टाय पूर्ताय च कर्मणेऽर्थान् दारानपत्याय तपोऽर्थमायुः।।[10]

इच्छा या कामना पुरूषार्थ की श्रेणी में आती है। इच्छा का पर्यावसान सुखमय होता है। धन, भवन, आभूषण, पुत्र, कलम, नित्य अन्न, क्रीड़ा, कला, शरीर, इन्द्रिय, मन, विद्या एवं यश ये सभी सुख प्राप्ति के साधन संक्षेप में आनन्दोपलब्धि ही काम है। किन्तु सुख काम नामक पुरुषार्थ से तभी अभिहित हो सकता है तब वे धर्म सम्मत हों। भवभूति ने अपने नाटकों में मानव–जीवनमूल्यों को कामनापरक जीवनमूल्यों में स्थापित करते हुए उनके द्वारा वर्णित कामनापरक जीवनमूल्यों का केन्द्र लोकमंगल का निष्पादन, मोक्ष की प्राप्ति तथा वर्ण व्यवस्था के अनुसार का नियमन करता है। भवभूति के तीनों नाटकों का केन्द्र विश्वामित्र कामन्दकी और वसिष्ठ की धर्मपरक कामनाओं के परितः घटनाक्रम प्रवाहमान है। विश्वामित्र राम के पराक्रम को अस्त्रों से बढ़ाना और संसार की भलाई का निदान सीता को मिलाने की कामना करते हैं और

तदनुसार अनुज सहित राम को दशरथ से मांगकर ले आते हैं। जैसा कि प्रतिपादित भी है–

विजयिसहजमस्त्रैर्वीर्य मुच्छ्रायियिष्य४
जगदुपकृति बींज मैथिलीं प्रापयिष्यन्[11]

मालतीमाधव में इसी प्रकार भगवती कामन्दकी अपने मित्र देवराज के पुत्र माधव और भूरिवसु की पुत्री मालती के विधि अनुसार उनका विवाह सम्पन्न कराने की कामना करती है।

जामातृयज्ञेन वयं निरूद्धास्त्वं बाल एवासि नवं च राज्यम्।
युक्तः प्रजानामनुरंजने स्यास्तस्माद्यशोयत् परमं धनं वः।।[12]

इन कामनाओं को मूल भावना, लोककल्याण और लोकानुरंजन की है जिसे भवभूति धर्मपरक अर्थ की श्रेणी में रखते हैं और उससे अभिप्रेत इन कामनाओं की प्राप्ति को परमपुरुषार्थ मानते हैं।

अन्त में संक्षेपतः कहा जा सकता है कि भवभूति के नाटकों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उनके नाटकों मानवीय जीवन मूल्य पदे–पदे परिलक्षित होते है जो मानव मात्र को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। साथ ही उनके नाटकों में सांस्कृतिक जीवन मूल्यों की स्थापना की गयी है।

सन्दर्भ संकेत–

1. महावीरचरितम् 2/7।
2. महावीरचरितम् 2/37।
3. महावीरचरितम् 2/41।
4. उत्तररामचरितम् 6/9।
5. महावीरचरितम् 1/38।
6. उत्तररामचरितम् 1/12।
7. उत्तररामचरितम् 1/10।
8. मालतीमाधव 1/10।
9. मालतीमाधव 1/10।
10. मालतीमाधव 1/5।
11. महावीरचरितम् 1/8।
12. उत्तररामचरितम् 1/11।